जो मारे जाएँगे

धीरेंद्र अस्थाना

जो मारे जाएँगे

भूमिका

ये बीसवीं शताब्दी के जाते हुए साल थे - दुर्भाग्य से भरे हुए और डर में डूबे हुए। कहीं भी, कुछ भी घट सकता था और अचरज या असंभव के दायरे में नहीं आता था। शब्द अपना अर्थ खो बैठे थे और घटनाएँ अपनी उत्सुकता। विद्वान लोग हमेशा की तरह

अपनी विद्वता के अभिमान की नींद में थे - किसी तानाशाह की तरह निश्चिंत और इस विश्वास में गर्क कि जो कुछ घटेगा वह घटने से पूर्व उनकी अनुमति अनिवार्यतः लेगा ही। यही वजह थी कि निरापद भाव से करोड़ों की दलाली खा लेनेवाले और सीना तानकर राजनीति में चले आनेवाले अपराधियों और कातिलों के उस देश में खबर देनेवालों की जमात कब दो जातियों में बदल गई, इसका ठीक-ठीक पता नहीं चला। इस सच्चाई का मारक एहसास तब हुआ जब खबरनवीसों का एक वर्ग सवर्ण कहलाया और दूसरा पिछड़ा हुआ। इस कथा का सरोकार इसी वर्ग से है, इस निवेदन के साथ कि बीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में घटी इस दुर्घटना को सिर्फ कहानी माना जाए। इस कहानी के सभी पात्र-स्थितियाँ-स्थान काल्पनिक हैं। किसी को किसी में किसी का अक्स नजर आए तो वह शुद्ध संयोग होगा और लेखक का इस संयोग से कोई लेना-देना नहीं होगा।

चरित्र-परिचय

पिछड़ी जाति के खबरनवीस दरअसल खबरनवीस थे ही नहीं। वे विद्वान लोग थे। अलग-अलग अखबारों-पत्रिकाओं में नौकरी करने के बावजूद उनमें एक साम्य यह था कि वे अपने आसपास के समाज और वातावरण से असंतुष्ट और दुखी थे। वे मोटी-मोटी किताबें पढ़ते थे। समाज बदलने के विभिन्न रास्तों पर गंभीर बहसें करते थे। देश में हो रहे दंगे-फसादों को देख चिंतित होते थे। पुरस्कार प्राप्त करते थे और पुरस्कार देनेवाली समितियों के सदस्य भी थे। वे भाषा के धनी थे। कल्पनाशील थे। मेधावी थे। एक-दूसरे का सम्मान करते थे लेकिन अपने-आपमें सिमटे रहते थे। वे कविताएँ लिखते थे। कहानियाँ लिखते थे। आलोचनाएँ लिखते थे। सेमिनारों में भाषण देते थे। वे सिगरेट भी पीते थे, बीड़ी भी और सिगार भी। उनका कोई ब्रांड नहीं था। सुविधा और सहजता से जो भी मिल जाए उसे अपना लेते थे। वे जोखिम मोल नहीं लेते थे और दुखी रहते थे कि व्यवस्था बदल नहीं रही है। वे रम भी पी लेते थे और व्हिस्की भी। मात्रा कम हो तो वे रम और व्हिस्की को मिलाकर पी लेते थे। पी लेने के बाद भावुक हो जाना उनकी कमजोरी थी। पीने के बाद कभी वे 'हम होंगे कामयाब' वाला गीत गाते थे, कभी अपने न होने के बाद के शून्य और अभाव के भाव कविताओं में दर्ज करते थे। हर सुंदर स्त्री से प्रेम करने को वे आतुर रहते थे और पत्रकारिता के लगातार गिरते स्तर से क्षुब्ध रहते थे। उन्हें पत्रकारिता को सृजनशीलता से जोड़े रखने की गहरी चिंता थी और अपनी प्रतिभा पर उन्हें नाज था। वे सब अपने-अपने मालिकों को धनपशु कहते थे और उनकी सनकों-आदतों पर ठहाके लगाते थे। पत्रकारिता की दुनिया में वे खुद को श्रेष्ठतम और योग्यतम मानते थे और इस बात

पर हैरान रहते थे कि जब भी कोई नया अखबार शुरू होता है तो उनके पास बुलावा क्यों नहीं आता है।

सवर्ण जाति के खबरनवीस भी दरअसल खबरनवीस नहीं थे। यश, धन और सत्ता की उच्चाकांक्षा लेकर वे पत्रकारिता में घुसे थे और आँख बचाकर राजनीति के गलियारे में दाखिल हो गए थे। वे किताबें नहीं पढ़ते थे, राजनेताओं का जीवन-परिचय रटते थे। अपने मालिकों का वे बहुत सम्मान करते थे। और उनकी संतानों तक को खुश रखते थे। तस्करों, अधिकारियों और दिग्गज नेताओं से उनके सीधे ताल्लुक थे। वे खबरों के लिए मारे-मारे नहीं घूमते थे बल्कि खबरें उनके पास चलकर आती थीं। वे अपनी जेबों में गुप्त टेप रिकॉर्डर रखते थे और विशेष बातों को टेप कर लिया करते थे। वे जींस पहनते थे, स्कॉच पीते थे और कारों में चलते थे। वे मंत्रियों के साथ हवाई जहाजों में उड़ते थे और चुनाव के समय छुटभैयों को टिकट दिलाते थे। उनके नाम से नौकरशाही काँपती थी और उनके काम से उद्योगपतियों को कोटे-परमिट मिलते थे। निष्ठा, प्रतिबद्धता और विद्वता को वे उपहास की चीज समझते थे और साहित्य तथा संस्कृति को बर्दाश्त नहीं कर पाते थे। लोग इन्हें प्रोफेशनल कहते थे और स्टार मानते थे। जब भी कोई नया अखबार शुरू होता था, तो इन्हीं के पास बड़े-बड़े पदों के लिए प्रस्ताव आते थे। बीसवीं शताब्दी के जाते हुए वर्षों ने इन्हें पहचाना था और हाथ पकड़कर सवर्ण जाति की कतार में खड़ा कर दिया था।

यह कथा इन्हीं दो जातियों के उत्थान और पतन, द्वंद्व और अंतर्द्वंद्व तथा हर्ष और विषाद का साक्ष्य है। इसे लिख दिया गया है ताकि सनद रहे और भविष्य में काम आए।

दृश्य : एक

वह मैं नहीं हूँ, जो मारा गया। पुष्कर जी बार-बार अपने को यही दिलासा देने का प्रयास कर रहे थे पर जो घटा था उनके साथ, वह इतना नंगा और सख्त था कि अपनी उपस्थिति उन्हें शर्म की तरह लग रही थी। दर्शक दीर्घा जैसे तालियों से गूँज रही थी और वह विदूषक की तरह खड़े थे मंच पर - एकदम अकेले और असुरक्षित। दर्शकों का शोर क्रमशः उग्र हो रहा था और जमीन थी कि फट नहीं रही थी, परदा था कि गिर नहीं रहा था। सीधे हाथ की उँगलियों में बुझी बीड़ी लिए वह कुर्सी पर इस तरह बैठे हुए थे मानो किसी मूर्तिकार का शिल्प हों। पूरे दस वर्षों की मेहनत और प्रतिबद्धता एक असंभव लेकिन क्रूर मजाक की तरह उन्हें मुँह चिढ़ा रही थी और दुःस्वप्न था कि शेष ही नहीं हो रहा था। अपने सामने पड़ी मैनेजमेंट की तीन लाइन की चिट्ठी उन्होंने

फिर पढ़ी। एकदम साफ लिखा था : 'आप नए पाठक वर्ग को समझ नहीं पा रहे हैं इसलिए फिल्म के पेज विनय को सौंप दें। नया कार्यभार मिलने तक आप चाहें, तो छुट्टी पर जा सकते हैं।'

सब कुछ कितना पारदर्शी था! कहीं कोई पेंच नहीं, अस्पष्टता नहीं। मैनेजमेंट ने उनसे उनके वे पेज ही नहीं छीने थे, जो उन्होंने अपने दस वर्षों की मेहनत, ज्ञान, प्रतिभा और सक्रियता से सँवारे थे, प्रतिष्ठित किए थे बल्कि उनकी पेशेवर क्षमता और फिल्म माध्यम की समझ को भी नकार और लताड़ दिया था। कहाँ असफल हुए वे? कौन नहीं समझ पा रहा है पाठक वर्ग को? कौन-सा पाठक वर्ग? अखबार क्या अब मनोरंजक सिनेमा की तर्ज पर निकलेंगे? उनके पन्नों को अब विनय देखेगा, जो सिनेमा की ए बी सी डी भी नहीं जानता, तारकोवस्की और गोदार का नाम सुनकर जिसे गश आ जाता है और मिथुन चक्रवर्ती को जो सर्वश्रेष्ठ हीरो मानता है और श्रीदेवी पर जो फिदा है? गहरे अवसाद की गिरफ्त में थे पुष्कर जी। 'नया कार्यभार मिलने तक वह चाहें, तो छुट्टी पर जा सकते हैं' - क्या मतलब है इसका? पुष्कर जी को सब कुछ साफ समझ आ रहा था, पत्रकारिता की नई रिजीम में अट नहीं पा रहा है उनका ज्ञान। अखबार में उनकी उपस्थिति को व्यर्थ सिद्ध कर देने की कार्रवाई है यह। फिल्म पत्रकारिता के लिए राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त कर चुके पुष्कर जी का विकल्प है विनय, जो नए पाठक वर्ग को समझता है और हमारे गौरवशाली अतीत को संस्कृति का कूड़ेदान कहकर मुँह बिचकाता है। ठीक है, यही सही। पुष्कर जी ने ठंडी साँस ली और सोचा, हाशिए पर ही सही लेकिन रहेंगे वह तनकर ही।

दृश्य : दो

पुराने संपादक को हटाकर नए संपादक को लाए जाने के क्षोभ से मुक्त भी नहीं हुए थे प्रवीण जी कि अभी-अभी आए सुमन जी के फोन ने उन्हें और उद्विग्न कर दिया। सुमन जी ने सूचित किया था कि उनके अखबार के संपादक को डिमोट कर दिया गया है जिसके विरोधस्वरूप वह इस्तीफा दे गए हैं। कवियों के कवि कहे जाते थे सुमन जी के संपादक। हिंदी को उन्होंने अनेक नए शब्द दिए थे। उनके संपादन में निकल रहा अखबार बौद्धिक संसार की महत्वपूर्ण घटना बना हुआ था। मैनेजमेंट का तर्क था कि स्तर भले ही उठ रहा हो अखबार का, लेकिन सर्कुलेशन गिर रहा है। उनकी जगह 32 वर्ष के जिस युवक को संपादक बनाकर लाया जा रहा था, वह प्रधानमंत्री के एक सलाहकार के भाई का भतीजा था।

यानी पत्रकारिता का पतन शुरू हो गया है। प्रवीण जी ने सोचा। इस पतन पर पूरी तरह चिंतित भी नहीं हो पाए थे वह कि चपरासी ने आकर बताया कि उनके नए संपादक ने उन्हें याद किया है। सहसा वह घबरा गए। उठकर संपादक के केबिन की तरफ चले, तो पाया कि पूरा हॉल उन्हें ही घूर रहा है। अपने सिमटे-सिमटे वजूद को और अधिक सिमटाकर वह धीरे-धीरे चले और केबिन में घुस गए।

सामने संपादक था। लकदक सफारी में ट्रिपल फाइव पीता हुआ। सुना था कि यहाँ आने से पहले वह किसी दूसरे देश की प्रसारण सेवा में था। सामना होने पर उसे ऐसा ही पाया प्रवीण जी ने। अपने यहाँ के लोगों की तरह थका-थका और चिंताग्रस्त नहीं बल्कि चुस्त-दुरुस्त और आक्रामक। बहुत अशक्त और असुरक्षित-सा महसूस किया प्रवीण जी ने खुद को।

'आप साहित्य देखते हैं?' पूछा संपादक ने। कोई भूमिका नहीं। दुआ-सलाम की कोई औपचारिता नहीं और कुर्सी पर बैठने का आग्रह करनेवाली कोई शिष्टता नहीं।

आहत हो गए प्रवीण जी। उन्होंने कुछ इस अंदाज में गर्दन हिलाई मानों साहित्य देखते रहकर वह अब तक एक अक्षम्य अपराध करते आ रहे हों।

'अगले अंक से साहित्य बंद।' संपादक ने कश लिया। 'आप न्यूज के पन्नों पर शिफ्ट हो जाइए।'

'लेकिन...' प्रवीण जी की आवाज फँस-सी गई। वह खुद एक प्रतिष्ठित कथाकार थे और अपने सामने किसी सनकी तानाशाह की तरह बैठे इस नए संपादक को झेल नहीं पा रहे थे। इतने आदेशात्मक स्वर में उनके पूर्व संपादक ने कभी बात नहीं की थी उनसे। लेकिन वह अंतर्मुखी स्वभाव के बेहद संकोची व्यक्ति थे इसलिए बहुत-बहुत चाहने पर भी गुस्से से उखड़ नहीं सके। दबे-दबे शब्दों में रुक-रुककर बोले, 'लेकिन, हमारी मैगजीन का बहुत प्रेस्टीजियस पेज हैं ये।'

'नाओ यू कैन गो।' संपादक ने सिगरेट ऐश ट्रे में मसल दी और फोन करने में व्यस्त हो गया।

कई टुकड़ों में कट चुके अपने जिस्म को लिए-दिए किसी तरह केबिन से बाहर निकले प्रवीण जी और अपनी सीट पर जाकर धुआँ-धुआँ हो गए।

दृश्य : तीन

बहुत दिन जब्त नहीं कर सके सुमन जी। अपने नए संपादक पर ताव आ ही गया उन्हें। आता भी क्यों नहीं? आखिर सहायक संपादक थे। इससे पहले तीन संपादक भुगत चुके थे। एक संपादक के जाने और दूसरे संपादक के आने के अंतराल वाले दिनों में अखबार के कार्यवाहक संपादक कहलाते थे। अपने पूर्व संपादक के जाने का गम भी शेष नहीं हुआ था अभी और उस दौर को वह अपना स्वर्णिम अतीत मानते थे। नए संपादक का आगमन उन्हें वज्रपात-सा लगा था और अखबार के प्रति अपनी रागात्मकता में भी दरार-सी आई महसूस की थी उन्होंने। नए संपादक द्वारा किए जा रहे क्रांतिकारी परिवर्तनों का शुरू में उन्होंने प्रतिवाद किया भी किया, लेकिन बाद में यह सोचकर ठंडे पड़ गए कि अखबार कौन उनके बाप का है। वे नौकर हैं और नौकरी करते रहना ही नौकर का अंतिम सच है। कला, साहित्य, संस्कृति के सभी नियमित-अनियमित स्तंभ नए संपादक ने अपने साथ लाए नए लड़कों को सौंप दिए थे। कविता-कहानी छापने पर प्रतिबंध लगा दिया था। सेक्स और ग्लैमर का स्पेस बढ़ा दिया था। धर्म को प्रमुखता से छापा जाने लगा था। सुमन जी किसी दुखद हादसे की तरह सब कुछ बर्दाश्त करते आ रहे थे।

उनके अखबार के बारे में जनता की धारणा बदलने लगी थी और उनके हितैषी उन्हें सलाह देने लगे थे कि अब आपको इस अखबार से हट जाना चाहिए। कई बार तो लोग मजाक-मजाक में उनके अखबार को प्रधानमंत्री निवास का मुखपत्र तक कह डालते थे। सुमन जी जानते थे कि यह सब परिवर्तन मैनेजमेंट की शह पर हो रहे हैं क्योंकि मैनेजमेंट में भी अब नए लोग आ गए थे। ये नए लोग अखबार से मुनाफा चाहते थे। इस चाहत से सुमन जी को कोई एतराज नहीं था, लेकिन यह बात उनकी बुद्धि में नहीं अटकती थी कि परिर्वतन की दिशा पतन की ओर जाना क्यों जरूरी है। इन सब तनावों में मुब्तिला रहने के कारण सुमन जी की नींद गायब रहने लगी थी। लेकिन सुकून खोजने वह जाते भी तो कहाँ? हर पत्रिका, हर अखबार में परिवर्तन की यह तेज आँधी चल रही थी। जिस्म दिखाऊ हीरोइनों की तरह सभी तो अपने ज्यादा-से ज्यादा कपड़े उतारने की होड़ में शरीक थे। लेकिन अब पानी सिर के ऊपर बह रहा था। राम जन्मभूमि-बाबरी मस्जिद विवाद के मसले पर अखबार ने साफ तौर पर धर्मांध हिंदुओं का प्रवक्ता बनना शुरू किया, तो सुमन जी बौखला गए। उनकी सोची हुई प्रगतिशीलता ने अँगड़ाई ली और उठ खड़ी हुई।

एक दिन शाम के साढ़े सात-आठ बजे के करीब सुमन जी तीन पैग रम पीकर संपादक के कमरे में घुस गए।

जिस समय सुमन जी संपादक के कमरे में घुसे, वहाँ ठहाके गूँज रहे थे। अखबार के ही तीन-चार जूनियर पत्रकारों से घिरा संपादक अपनी कोई शौर्य-गाथा बयान कर रहा था और उसके सामने बैठे लोग हैं-हैं, हैं-हैं कर रहे थे।

सुमन जी को यकायक आया देख कमरे में सन्नाटा छा गया। जूनियर पत्रकारों को आग्नेय नेत्रों से ताका सुमन जी ने, लेकिन आश्चर्य कि वे बिना सहमे और बिना विचलित हुए उसी तरह बैठे रहे।

'आप लोग जरा बाहर जाएँ।' सुमन जी ने ठंडे स्वर में कहा। वह अपने क्रोध को गलत जगह जाया नहीं करना चाहते थे।

'सब अपने ही लोग हैं सुमन जी,' संपादक ने सुमन जी के आदेश पर घड़ों पानी उलट दिया, 'बताइए-बताइए, व्हाट्स द प्रॉबलम?'

इस बेधक अपमान से सुमन जी का गिरेबाँ जैसे चाक हो गया। खुद को सहेजने की बहुत कोशिश की उन्होंने पर माहौल का दंश और नशे की आक्रामकता उन्हें उग्र बिंदुओं तक खींच ही ले गई। तन्नाकर बोले, 'सांप्रदायिकता को हवा दे रहे हैं आप! यह मनुष्य-विरोधी हरकत है।'

'अच्छा?' संपादक की आँखें विस्मय से फट-सी गईं, 'और यह जो हिंदुस्तान में रहते हैं, हिंदुस्तान का खाते हैं लेकिन जय पाकिस्तान की बोलते हैं, यह कौन-सी हरकत है।?' संपादक बेहद संयत स्वर में पूछ रहा था। 'इतना ही पाकिस्तान से प्रेम है तो रहें जाकर पाकिस्तान में ही।'

'लेकिन...' सुमन जी ने प्रतिवाद करना चाहा मगर बीच में ही उनकी बात काटकर वहाँ बैठे एक पत्रकार ने कहा, 'बिल्कुल ठीक कहा सर जी ने। हम खुद को हिंदू कहें तो सांप्रदायिक। वे खुद को मुसलमान कहें, तो धर्मनिरपेक्ष। गजब थ्योरी है प्रगतिशीलता की। अजी साहब, आप देखते रहिए, जिस तेजी से इनकी जनसंख्या बढ़ रही है उसे देखते हुए हिंदू ही एक दिन अल्पसंख्यक कहलाएँगे।'

'एक दिन क्यों?' संपादक ने सिगरेट सुलगाते हुए कहा, 'अंतर्राष्ट्रीय नक्शे पर नजर डालो, पता चल जाएगा कि दुनिया में हिंदू ज्यादा हैं या मुसलमान।'

'लेकिन हम जागरूक लोग हैं।' सुमन जी ने अपना पक्ष रखा।

'जागरुक हैं तो आत्महत्या कर लें?' संपादक ने पूछा तो वहाँ मौजूद पत्रकार ठहाका लगाकर हँस पड़े। ठहाकों ने सुमन जी को हत्थे से उखाड़ दिया। चीखकर बोले, 'आप पागल हो गए हैं। जहर उगलनेवाले संपादकीय लिखते हैं आप। आप पत्रकार हैं। आप पर भारी दायित्व है। एक बड़े अखबार के संपादक हैं आप। आपको यह अधिकार नहीं है कि धार्मिक जुनून को हथियारबंद करें।'

'इट्स लिमिट।' संपादक का संयम जवाब दे गया। घंटी बजाते हुए उसने कड़वाहट से पूछा, 'आप खुद बाहर जाएँगे या...?'

सुमन जी चुपचाप बाहर निकल गए। उन्हें लग रहा था कि रक्तरंजित खंजर थामे दंगाइयों की भीड़ में वह एकदम निहत्थे और अकेले छोड़ दिए गए हैं।

चार दिन बाद सुमन जी मैनेजमेंट की चिट्टी पढ़ रहे थे। शराब पीकर संपादक से अभद्र व्यवहार करने के दंडस्वरूप उन्हें निलंबित कर दिया गया था।

दृश्य : चार

'विमल जी, कोई नई कविता लिखी आपने?' श्याम जी ने तीसरे पैग का अंतिम सिप लेकर सिगरेट जलाते हुए पूछा। श्याम जी बहुत दिनों बाद सोवियत रूस से लौटे थे और यह सवाल पूछने से पहले बता रहे थे कि रूसी समाज अपने लेखकों और संस्कृतिकर्मियों का कितना सम्मान करता है।

श्याम जी प्राध्यापक थे। समाजवादी चिंतक थे और कविताएँ लिखते थे। वह राजधानी में एक पॉश इलाके में तीन बेडरूम के फ्लैट में सुखपूर्वक रहते थे और देश में हो रहे अनाचार, भ्रष्टाचार और जुल्म की कहानियाँ पढ़-सुनकर व्यथित रहते थे। हाल ही में उन्हें सोवियत लैंड नेहरू एवार्ड मिला था जिसे सेलिब्रेट करने वह प्रेस क्लब में अपने मित्रों के साथ आए थे।

श्याम जी के प्रश्न से विमल जी को मर्मांतक चोट लगी। वह तो जैसे यह भुला ही बैठे थे कि वह कवि हैं। जिस पत्रिका में वह काम करते थे वह राजनीतिक पत्रिका थी और उसमें वह विदेशी मामलों के प्रभारी थे। चीन, जापान, नेपाल, पाकिस्तान, ब्रिटेन, अमेरिका और क्यूबा की राजनीति उन्हें इतनी मोहलत ही कहाँ देती थी कि वह कविता का खयाल रख पाते। श्याम जी का सवाल सुन चुप्पी साध गए और उस दिन को अपराध की तरह याद करने लगे जब वह अच्छी-खासी बैंक की नौकरी छोड़कर पत्रकारिता में आए थे।

'यह कविता लिखने का समय है?' जवाब दिया प्रवीण जी ने। 'आप प्रोफेसर हैं इसलिए यह बात समझ ही नहीं सकते कि यह कविता-विरोधी, शब्दविरोधी समय है।'

'हम अखबारों में नहीं, आत्महत्या केंद्रों में नौकरी कर रहे हैं।' एक फीकी और दर्दभरी मुस्कान के साथ बोले पुष्कर जी, 'हमारा सब पढ़ा-लिखा अब अप्रासंगिक हो चुका है। अपने-अपने अखबारों में हम हाशिए पर फेंक दिए गए लोग हैं।'

'अखबारों में ही क्यों? जीवन में भी कहाँ हैं हम?' सुमन जी ने पूछा और रम का सिप लेकर खुद ही जवाब भी दिया, 'जिस देश में प्रतिभा को देशनिकाला मिल जाए वहाँ सिर्फ जीते रहने के सिवा कर भी क्या सकते हैं हम? एक डरे और भौंचक आदमी से कविता लिखने की उम्मीद कैसे की जा सकती है भला? जो हालात हैं उनमें जीते रहकर कभी-कभी तो ऐसा भी लगता है श्याम जी, कि जो जीवन हमने जिया वह एकदम ही फिजूल और अतार्किक था।'

श्याम जी को वातावरण की गंभीरता और गमगीनी का अहसास हो रहा था। एक भारी-सी 'हूँ' की उन्होंने और शून्य में ताकने लगे।

'असल में, सफलता के दरवाजे नहीं खोज पाए हम।' पुष्कर जी के स्वर में तिक्तता थी। 'हम कभी नहीं जान पाए कि हमारा ज्ञान ही हमारा शत्रु है।'

'लेकिन मुझे इसका कोई पछतावा नहीं है।' सहसा विमल जी ने चुप्पी तोड़ी। 'मुझे भरोसा है कि एक दिन इसी देश के लोग उठेंगे और सब कुछ बदल देंगे।'

'एक दिन!' एक जोरदार ठहाका लगाया सुमन जी ने और उठ खड़े हुए। लड़खड़ाते स्वर में बोले, 'एक दिन। हम होंगे कामयाब एक दिन। क्रांतिकारी भी यही गाना गाते हैं और सरकार ने भी इसे अपना लिया है। एक दिन...' सुमन जी बोले और सबको भौंचक छोड़ प्रेस क्लब से बाहर निकल गए।

'क्या बात है, सुमन जी कुछ ज्यादा ही डिप्रेस हैं?' श्याम जी ने शराब का एक बड़ा घूँट लिया।

'यह डिप्रेशन का ही समय है डियर।' विमल जी बोले, 'आओ, अब घर चलें कि अब वही एक जगह बाकी है जहाँ कुछ-कुछ सुरक्षित हैं हम।'

श्याम जी ने बिल अदा किया और सभी लोग उठ खड़े हुए। उनके खड़े होते ही कोने की एक मेज से तीन-चार कर्कश ठहाके उछले। इस मेज पर सवर्ण पत्रकारों की टोली बैठी थी।

दृश्य : पाँच

पिछड़ी जाति के तकरीबन सभी पत्रकार प्रेस क्लब में इकट्ठे थे। उनके इस भारी जमावड़े से सवर्ण जाति के पत्रकार खासी उलझन और परेशानी में पड़ गए थे क्योंकि प्रेस क्लब में करीब तीन-चौथाई जगह पर पिछड़ी जाति काबिज थी। कोने की मेज पर बैठा एक सवर्ण जाति का पत्रकार इस दखलंदाजी से खासा क्षुब्ध था। डनहिल के पैकेट से सिगरेट निकाल उसने सामने बैठी अपनी महिला पत्रकार मित्र से कहा, 'इन चिरकुटों की एंट्री पर बैन लगना चाहिए यहाँ। मूड ऑफ कर देते हैं।'

'लीव इट यार।' महिला पत्रकार ने जिन का सिप लिया और उपेक्षा से बोली, 'ये अपनी मौत मरेंगे।'

पिछड़ी जाति के पत्रकार अपनी सामूहिक खुशी का जश्न मनाने यहाँ आए थे। दिन-भर वे फोन द्वारा एक-दूसरे को बधाई देते-लेते रहे थे। उपेक्षा और अपमान से स्याह पड़े उनके चहेरे एक ताजे उल्लास से चमक रहे थे। उनका खोया हुआ आत्मविश्वास लौट आया था और उनकी आत्माओं पर छाया अंधकार छंट गया था। इनमें से कोई दस वर्ष से पत्रकारिता में था, कोई चौदह वर्ष से और कोई-कोई तो बीस वर्ष की पत्रकारिता कर युगपुरुष होने की एक तरफ बढ़ रहा था। यहाँ मौजूद आधे से अधिक लोग कोई न कोई पुरस्कार पा चुके थे। बहुतों की रचनाओं के अनुवाद जापानी, रूसी, अंग्रेजी और चीनी भाषा तक में हो चुके थे। तीन-चार लोगों की कहानियों पर फिल्में बन चुकी थीं और दो-एक लोगों की रचनाएँ विदेशों के पाठ्यक्रम में शरीक थीं। इतने भारी स्वीकार के बावजूद अपने घर में वह मुर्गी होकर भी दाल बने हुए थे और पिछड़ी जाति में खड़े होने के अभिशाप को जी रहे थे। उनके साथ ही नहीं उनके बहुत बाद में आए कई पत्रकार इस बीच नए अखबारों में बड़े-बड़े पदों पर चले गए थे। स्कूटरों को छोड़कर मारुतियों में शिफ्ट हो गए थे और नेताओं की जेबों से निकलकर मुख्यमंत्रियों के घरों में पहुँच गए थे।

इतने वर्षों में, लेकिन पिछड़ी जाति के पत्रकारों के पास कोई अच्छा ऑफर आना तो दूर, उसकी अफवाह भी नहीं आई थी। सत्ता, समय और समाज के सबसे अंतिम पायदान पर खड़े थे वे और अपने स्वजनों को मरता हुआ देख रहे थे लगातार। लेकिन आज उनकी वापसी का दिन था। आज के दिन को अपनी पुनर्प्रतिष्ठा की तरह याद

रखना था उन्हें, अपनी इसी वापसी का जश्न मनाने वह सवर्ण पत्रकारों के इस क्लब में उपस्थित हुए थे। आज देश के सबसे बड़े उद्योगपति ने अखबार निकालने का ऐलान किया था। इस उद्योगपति का दावा था कि वह देश के बाकी अखबारों को तबाह कर देगा। देश के सभी प्रमुख अखबार और प्रसारण केंद्र इस घोषणा के विज्ञापन से अटे पड़े थे और पत्रकारों के लिए नए अखबार का आगमन खुशी का कारण नहीं था। उनकी खुशी की वजह यह थी कि इस अखबार के प्रधान संपादक के पद पर उन्हीं की जाति के एक साथी को नियुक्त किया गया था। आज के समय में पिछड़ी जाति के एक पत्रकार का इतने बड़े पैमाने पर निकलने जा रहे अखबार में संपादक बनना पूरी अखबार-बिरादरी के लिए एक रहस्यमयी घटना थी। विद्वान लोगों ने तत्काल यह बयान जारी किया कि यह 'प्रतिभा की वापसी' का वर्ष है। इसी महान खुशी को सेलिब्रेट करने पिछड़ी जाति के पत्रकार प्रेस क्लब में एकत्र हुए थे। दिन में वे सब भावी संपादक से मिल चुके थे और बधाई दे चुके थे।

भावी संपादक यह देखकर भाव-विह्वल हो गया था कि उसकी बिरादरी के इतने सारे पत्रकार उसके हाथ मजबूत करने के लिए प्रस्तुत हैं। उसने घोषणा की थी कि प्रतिबद्ध पत्रकारिता का युग फिर शुरू होगा। उसने अपनी जाति के पत्रकारों से एकदम साफ कहा था कि प्रोफेशनलिज्म के नाम पर सनसनीखेज समाचार छापने-लिखनेवाले अपढ़ सवर्णों को उनकी औकात बता दी जाएगी। उसने आश्वासन दिया था कि इस अखबार के माध्यम से हम सब अपना होना एक बार फिर सिद्ध करेंगे और सृजनशील पत्रकारिता का गौरव फिर से प्रतिस्थापित करेंगे। उसने कहा था कि विद्वान और अनुभवी लोगों की टीम ही इस पतनशील समय का मुकाबला कर पाएगी। उसने यह भी कहा था कि अब वे सब निश्चिंत रहें क्योंकि उनके सहयोग के बिना तो वह चार कदम भी नहीं चल पाएगा।

संपादक के प्रतिबद्ध और संवेदनशील वचनों को सुनकर पिछड़ी जाति के पत्रकार भावुक हो गए थे और एक बार फिर सृजनशीलता के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को महसूस कर वे खुद पर गौरवान्वित हुए थे। प्रेस क्लब में शराब पीते हुए वे इस बात की अटकलें लगा रहे थे कि किसे क्या पद मिलेगा।

शराब का छठा राउंड समाप्त हुआ, तो पुष्कर जी लड़खड़ाते हुए उठे और जोर से चीखे, 'दिल्ली...'

'हम तुझसे बदला लेंगे।' उनके बाकी साथियों ने नारा लगाया।

इस नारे से प्रेस क्लब की दीवारें थर्रा गईं।

दृश्य : छह

प्रेस क्लब की इस पार्टी के ठीक एक महीने बाद उस देश की राजधानी से एक विचित्र अखबार प्रकाशित हुआ। विचित्र इस मायने में कि यह एक पूरा अखबार था - कई दैनिकों, पाक्षिकों, साप्ताहिकों और मासिकों को अपने में उदरस्थ किए हुए।

बत्तीस पेज के इस दैनिक अखबार में स्कूप भी थे, स्कैंडल भी। धर्म भी था, विज्ञान भी। फैशन भी था, पर्यटन भी। शिकार-कथाएँ भी थीं, प्रेत-कथाएँ भी। ज्योतिष भी था, कंप्यूटर भी। फैशन भी था, ग्लैमर भी। फिल्में भी थीं, दूरदर्शन भी। रसोई भी थी, बेडरूम भी। इसमें रेखा भी थी और श्रीदेवी भी। इसमें क्रिकेट भी था और शतरंज भी। इसमें सच्ची अपराध-कथाएँ भी थीं और बलात्कार करने के तरीके भी। इसमें कानून था और उससे बचने के उपाय भी। इसमें माफिया सरदारों के इंटरव्यू थे और फकीर से तस्कर बने लोगों की शौर्यगाथा भी। इसमें शेयर बाजार भी था और नौकरी पाने के तरीके भी। इसमें संगीत था, कला थी, संस्कृति थी, साहित्य था और सेक्स भी। इसमें आचार्य रजनीश के प्रवचन भी थे और देश के दंगे भी। इसमें प्रधानमत्री निवास भी था और विपक्षी गलियारा भी। यहाँ बाबरी मस्जिद भी थी और राम जन्मभूमि भी। इसमें देसी राजनीति भी थी और विदेशी मामले भी। इसमें लोक और फोक गायक भी थे और पाश्चात्य गीतकार भी। इसमें ब्रा और पेंटी के उत्तेजक विज्ञापनों से लेकर हेयर रिमूवर और सेक्स क्लीनिकों तक के इश्तहार थे। इसके सोलह पेज रंगीन थे और सोलह काले। इसकी कीमत इतनी कम थी कि पूरा देश अखबार पर टूटकर गिरा। पहले ही दिन से अखबार बाजार में छा गया।

सवर्ण जाति के सभी जाने-माने पत्रकार इसकी संपादकीय टीम में शामिल थे। संपादक के सिवा और कोई ऐसा शख्स इसमें खोजे भी नहीं मिला, जो पिछड़ी जाति से लेश मात्र भी ताल्लुक रखता हो।

अंतिम दृश्य

प्रेस क्लब फिर गुलजार था। तीन-चौथाई से अधिक मेजें फिर से डनहिल और ट्रिपल फाइव के धुएँ की जद में थीं और व्हिस्की तथा जिन पानी की तरह बह रही थी। सब खुश थे, किसी का मूड ऑफ नहीं था।